आत्मा में अपनापन ही साक्षात् धर्म

यह परमपवित्र भगवान आत्मा आनन्द का रसकन्द, ज्ञान का घनपिण्ड, शान्ति का सागर, गुणों का गोदाम और अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है।

इसप्रकार हमने देह की अपवित्रता तथा भगवान आत्मा की पवित्रता और महानता पर बहुत विचार किया है, पढ़ा है, सुना है; पर देह से हमारा ममत्व रंचमात्र भी कम नहीं हुआ और आत्मा में रंचमात्र भी अपनापन नहीं आया। परिणामस्वरूप हम वहीं के वहीं खड़े है, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाये हैं।

देह से अपनापन नहीं टूटने से राग भी नहीं टूटता; क्योंकि जो अपना है, वह कैसा भी क्यों न हो, उसे कैसे छोड़ा जा सकता है ? इसीप्रकार आत्मा में अपनापन स्थापित हुए बिना उसमें अन्तरंग स्नेह भी नहीं उमड़ता। अत: हमारे चिन्तन का बिन्दु आत्मा का अपनापन और देह का परायापन होना चाहिए। इसी से आत्मा में एकत्व स्थापित होगा, देह से भिन्नता भासित होगी।

निज भगवान आत्मा में अपनापन ही सम्यग्दर्शन है और निज भगवान आत्मा से भिन्न देहादि परपदार्थों में अपनापन ही मिथ्यादर्शन है।

अपनेपन की महिमा अद्भुत है। अपनेपन के साथ अभूतपूर्व उल्लसित परिणाम उत्पन्न होता है। आप प्लेन में बैठे विदेश जा रहे हों; हजारों विदेशियों के बीच किसी भारतीय को देखकर आपका मन उल्लसित हो उठता है। जब आप उससे पूछतें हैं कि आप कहाँ से आये हैं ? तब वह यदि उसी नगर का नाम ले, जिस नगर के आप हैं तो आपका उल्लास द्विगुणित हो जाता है। यदि वह आपकी ही जाति का निकले तो फिर कहना ही क्या ? यदि वह दूसरी जाति, दूसरे नगर या दूसरे देश का निकले तो वह उत्साह थोड़ा ठंडा पड़ जाता है।

इस उल्लास और ठंडेपन का एकमात्र कारण अपनेपन और परायेपन की अनुभूति ही तो है। अपने में अपनापन आनन्द का जनक है, परायों में अपनापन आपदाओं का घर है; यही कारण है कि अपने में अपनापन साक्षात् धर्म है और परायों में अपनापन महा-अधर्म है। **ह मैं स्वयं भगवान हूँ, पृष्ठ : 33-34**

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन
प्रतिदिन प्रात: 6:45 बजे अवश्य सुनें।
साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल)
से 011-32106419 नम्बर पर सम्पर्क करें।

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 22 257 अंक : 5

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

शुभपरिणामाधिकार

देखकर संतुष्ट हो उठ नमन वन्दन जो करे।
वह भव्य उनसे सदा ही सद्धर्म की प्राप्ति करे।।८।।•
उस धर्म से तिर्यंच नर अर सुरगति को प्राप्त कर।
ऐश्वर्य-वैभववान अर पूरण मनोरथवान हों।।९।।•

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

द्रव्यसामान्याधिकार

सम्यक् सहित चारित्रयुत मुनिराज में मन जोड़कर।
नमकर कहूँ संक्षेप में सम्यक्त्व का अधिकार यह।।१०।।•
गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय।।९३।।
पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
थित जीव ही हैं स्वसमय ह यह कहा जिनवरदेव ने।।९४।।
निजभाव को छोड़े बिना उत्पादव्ययध्रुवयुक्त गुण-
पर्ययसहित जो वस्तु है वह द्रव्य है जिनवर कहें।।९५।।

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा ८-९ और १०

ह डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

कौन बंधता है और कौन नहीं ?

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 26 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

बध्यते मुच्यते जीव: सममो निर्ममो क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।।26।।

ममतासहित जीव और ममतारहित जीव अनुक्रम से बंधता है और मुक्त होता है; इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्न से निर्ममत्व का विशेषरूप से चिन्तवन करना चाहिए।

(गतांक से आगे .....)

भगवान आत्मा कर्मों से बंधा हुआ नहीं है तथा रागादिभावों के बंधन से भी निर्लेप है। ऐसे निर्लेप स्व-शुद्ध सत्ता की भूमि में राग का अंश मानना अर्थात् राग मेरी सत्ता में है, मुझे लाभदायक है ह्न ऐसा मानना मिथ्यादर्शन है। इस मिथ्या अभिप्राय की जीवों को खबर नहीं है। वास्तविक त्याग योग्य तो यही है; किन्तु यह अज्ञानी बाहर की वस्तु को त्यागयोग्य मानता है, इससे तो इसका मिथ्यात्व ही पुष्ट होता है।

जो बात आचार्य कुन्दकुन्द ने बन्धाधिकार में और आचार्य अमृतचन्द्र देव ने टीका और कलश में कही है, वही बात यहाँ पण्डित आशाधरजी ने पूज्यपादस्वामी के छन्दों की टीका में कही है। पण्डित आशाधरजी गृहस्थाश्रम में थे, वे इस छन्द में **मम** से बंधन और **निर्मम** से बंधन नहीं है - इस बात की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ह्न जो जीव निर्लेप, अबंध, शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी सत्ता के साथ रागादि का मिलान करके राग को लाभदायक मानता है अर्थात् राग मेरा है और मैं उसका हूँ ह्न ऐसा जो मिथ्या अभिप्राय करता है ह्न वह जीव कर्मों से बंधता है।

अनादिकाल से जीव ने मिथ्यात्व का धंधा किया है। अरे ! दिगम्बर मुनि होवे; लेकिन मिथ्यात्व नहीं छोड़े। शुक्ललेश्या का परिणाम करते हुए नवमें

ग्रैवेयक तक जाकर आवे; किन्तु जबतक ऐसा भेदज्ञान नहीं करे कि शुक्ललेश्या का परिणाम मैं नहीं हूँ, तबतक कर्मबन्धन से नहीं छूटता ।

शरीर की क्रिया या पाँच इन्द्रियों के विषय बंध के कारण नहीं है। कर्म होने योग्य जगत् के पुद्गल परमाणु भी कर्मबन्धन के कारण नहीं है तथा किसी जीव का घात भी कर्मबन्धन का कारण नहीं है; एकमात्र अपने चैतन्य उपयोगरूप स्वभाव की दृष्टि छोड़कर पुण्य-पाप का परिणमन अपनी सत्ता के साथ जोड़ना ही कर्मबन्धन का कारण है।

चैतन्य के उपयोग में राग के अंश का त्रिकाल अभावरूप स्वभाव है ह्न ऐसा न मानकर अभिप्राय में राग का एकत्व करना ही अनन्त संसारके बंध का कारण है। राग मिथ्यात्व के बंध का कारण नहीं है; पर राग से एकत्व मानना मिथ्यात्व के बंध का कारण है।

समयसार में पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा ने बहुत अच्छा अर्थ किया है कि अन्तरंग अपेक्षा से तो समकिती अबंध ही है और सम्यग्दर्शन रहित जीव बाह्य में यथायोग्य त्याग करता है; लेकिन उसके अभिप्राय में यदि ऐसा है कि यह त्याग मैंने किया और यह शुभराग मुझे लाभदायक है; तो ऐसी मान्यतावाला वास्तव में परमधर्म का त्यागी है और मात्र अधर्म का ही भोगी है। भाई ! यह तो वीतराग का मार्ग है। यहाँ किसी की मनमानी नहीं चलती ।

भाई ! भगवान आत्मा चैतन्यज्योति, ज्ञानमूर्ती, चैतन्यसूर्य है। ऐसे चैतन्यप्रकाश के नूर में रागका शुभविकल्प उठना तो अंधकार है। अब तू इस प्रकाश और अंधकार को एक मानना छोड़; क्योंकि यही तेरी मिथ्यात्व और अनंत संसार में रखड़ने की भूल है। यही एक बंध का कारण है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई बंध का कारण नहीं है।

अब यहाँ आत्मानुशासन के 110 वें श्लोक का आधार लिया है। **मैं अकिंचन हूँ** अर्थात् किंचित् मात्र भी राग मेरा नहीं है। मैं तो रागादि विकल्पों से रहित चैतन्य भगवान हूँ, यह विकल्प मेरे कुछ भी नहीं है। मैं तो मात्र जानने-देखनेवाला हूँ। स्त्री-पुत्र-परिवार तो मेरे हैं ही नहीं; ये तो मुझसे बहुत दूर हैं। मेरी पर्याय में हुए रागादि भाव भी मेरे स्वरूप में नहीं हैं और विकल्प भी मेरे नहीं है।

मुनिराज कहते हैं कि बस ! मैं अकिंचन हूँ ह्न ऐसी भावना करते हुए अन्तर में स्थिर होओ और तीनलोक के स्वामी बन जाओ।

लोगों को यह बात समझ में नहीं आती, वे इस बात से बेखबर हैं और अन्य व्रत-भक्ति आदि बातों में ही धर्म मानते हैं; किन्तु भाई ! यह वस्तुस्वरूप नहीं है।

प्रश्न : फिर व्रत-भक्ति आदि कब करना चाहिये ?

उत्तर : भाई ! ये भाव आते है; लेकिन वह मोक्षमार्ग नहीं है। वे संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण नहीं है। जो शुद्धस्वरूप में पूर्ण स्थिर नहीं हो सकता, उसे शुभभाव आते हैं; लेकिन वे मोक्षमार्ग नहीं हैं। एकबार स्वरूप में ठहरने पर धीरे-धीरे केवलज्ञान प्राप्त होता है। स्वरूप में स्थिरता के बिना दूसरा कोई केवलज्ञान का उपाय नहीं है।

मैं राग और जड़ की क्रिया से भिन्न हूँ। राग और देह की क्रिया मुझमें नहीं होती और मैं राग और देह की क्रिया में नहीं जाता। ज्ञायकस्वभाव कभी तीन काल में भी रागरूप या देह की पर्यायरूप उत्पन्न नहीं होता। इसलिये राग और देह की क्रिया में ममत्व करना ही एकमात्र संसार बंधन का मूल कारण है।

इसतरह आत्मानुशासन के 110 वें श्लोक में परमात्मा होने का मार्ग बता दिया है। **मैं अकिंचनस्वरूपी हूँ** ह्न ऐसी भावनापूर्वक स्वरूप में स्थिर हो जाये तो योगी अल्पकाल में ही परमात्मा-तीन लोक का नाथ बन जाता है।

थोड़ा लेकिन सच्चा ग्रहण करे तो उस थोड़े में ही पूर्ण केवलज्ञान को प्राप्त करने की ताकत है; अत: थोड़ा हो लेकिन सच्चा हो। इससे विपरीत थोड़ी भी खोटी मान्यता ग्रहण करे तो उसमें भी अनंत निगोद के भव कराने की ताकत है।

यहाँ स्पष्टरूप से परमात्मा बनने का रहस्य बता दिया है। राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता में रहना ही एक परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय है। इसमें समस्त शास्त्रों का सार आ जाता है। **(क्रमश:)**

निर्दोष अरहंतदशा कैसी ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की छठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ।।6।।

क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग – ये अठारह दोष अरहंत भगवान में नहीं होते।

(गतांक से आगे ....)

हे भव्य ! तुझे सर्वज्ञ की सत्ता का निर्णय करना चाहिये; क्योंकि जिसको सर्वज्ञ का निर्णय नहीं है, उसे शास्त्र का निर्णय नहीं है और शास्त्र के निर्णय के बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता तथा सम्यग्ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता।

इस तरह सर्वज्ञ के प्रसाद से ही सुशास्त्र की उत्पत्ति और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है; अत: वे ही पूज्य हैं। स्वयं अपनी योग्यता से सम्यग्ज्ञान प्रगट किया; वहाँ निमित्त में आरोप करके कहते हैं कि हे नाथ ! आपके प्रसाद से ही मैंने सम्यग्ज्ञान पाया, आपने ही मुझे सम्यग्ज्ञान दिया।

क्या इसका आत्मा गुरु के पास था जो उन्होंने दे दिया ? क्या कोई किसी को आत्मा दे सकता है ? किन्तु पहले स्वयं अपना भान नहीं था और अब गुरु के उपदेश से वह भान हुआ, तब विनयपूर्वक कहते है कि हे नाथ ! आपने परमकृपा करके मुझे आत्मा दिया ह्न ऐसा निमित्त का कथन है।

यहाँ तो कहा है कि ह्न परम इष्ट ऐसी मुक्ति वह तो सर्वज्ञ की ही कृपा का फल है; क्योंकि सर्वज्ञदेव से ही शास्त्र की उत्पत्ति होती है, शास्त्र से ही सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है और वह सम्यग्ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। इस भाँति मोक्ष का बीज सर्वज्ञ

ही हैं, इसलिये वह सर्वज्ञदेव ही बुधपुरुषों से पूजने योग्य हैं; क्योंकि किये हुए उपकारों को सज्जनवृन्द कभी भूलते नहीं। स्वयं जबतक राग की भूमिका में हैं; तबतक उपकारक के प्रति बहुमान और भक्ति का भाव आये बिना नहीं रहता।

सर्वज्ञदेव अठारह महादोषों से रहित हैं। वीतराग सर्वज्ञदेव के अलावा तीनलोक इन दोषों से व्याप्त हैं और सर्वज्ञदेव ही इनसे रहित हैं ह्न ऐसा छठवीं गाथा में कहा है।

अब छठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा सर्वज्ञ भगवान श्री नेमिनाथजी की स्तुति करते हैं ह्न

शतमखशतपूज्य: प्राज्यसद्बोधराज्य:,
स्मरतिरसुरनाथ: प्रास्तदुष्टाघयूथ:।
पदनतवनमाली भव्य पद्मांशुमाली,
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमि:।।

जो सौ इन्द्रों से पूज्य हैं, जिनका सद्बोधरूपी (सम्यग्ज्ञानरूपी) राज्य विशाल है, कामविजयी (लौकान्तिक) देवों के जो नाथ हैं; दुष्ट पापसमूह का जिन्होंने नाश किया हैं, वनमाली ने जिनके चरणों को नमस्कार किया हैं, भव्यकमल के जो सूर्य हैं अर्थात् भव्योंरूपी कमलों को विकसित करने में जो सूर्य के समान हैं; वे आनन्द-भूमि नेमिनाथ, आनन्द के स्थानरूप नेमिनाथ भगवान हमें शाश्वत सुख प्रदान करें।

देखो ! टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं महाब्रह्मचारी हैं और सर्वज्ञ की स्तुति करते हुए भी उन्होंने ब्रह्मचारी ऐसे श्री नेमिनाथ प्रभु की स्तुति की है। सर्वज्ञपद तो सभी समान हैं, उनमें कहीं गुणों की हीनाधिकता नहीं है। भगवान अर्हन्त के शरीर तो होता हैं; किन्तु आहार या क्षुधा-तृषा आदि का अभाव होता है ह्न ऐसे सर्वज्ञ पुरुष ही आप्त हैं और वे ही आत्महित के लिए मानने योग्य हैं। मोक्ष का उपाय सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान का उपाय सुशास्त्र है और सुशास्त्र की उत्पत्ति सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से होती है; अत: मोक्ष के कामी जीव को ऐसे सर्वज्ञदेव को पहिचानकर उनकी पूजा करना योग्य है।

ऐसे सर्वज्ञ में यहाँ श्री नेमिनाथ प्रभु की स्तुति करते हुए मुनिराज कहते हैं कि भगवान सौ इन्द्रों से पूज्य हैं, उनके सद्बोधरूपी राज्य है। केवलज्ञान में जिस प्रमाण में जाना है ह्न उसी प्रमाण में होता है। ज्ञान की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।

ज्ञान का पूर्ण विकास हुआ और सम्पूर्ण जगत का ज्ञान हो गया; वही सच्चा राज्य है, उस ज्ञान का राज्य विशाल है।

इन नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुये कहते हैं कि भगवान कामविजयी ऐसे लौकान्तिक देवों के नाथ हैं। लौकान्तिक देव पंचम स्वर्ग में रहते हैं, वे ब्रह्मचारी होते हैं और एक भवावतारी भी होते हैं; उन्हें ब्रह्मर्षि भी कहते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी देवों के जो नाथ हैं – ऐसे नेमिनाथ भगवान की स्तुति यहाँ की है। लौकान्तिक देव भी उनके चरणों की वन्दना करते हैं; इसलिये निमित्तरूप से भगवान को नाथ कहते हैं। वे देव आत्मा की सर्वज्ञशक्ति को माननेवाले सम्यग्दृष्टि हैं अर्थात् आत्मा के श्रद्धा–ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं। उसे टिकाये रखकर अबतक अप्राप्त ह्न ऐसी सर्वज्ञदशा की प्राप्ति करते हैं, उसमें भगवान निमित्त हैं ह्न इसलिये भगवान को नाथ कहा है। नाथ अर्थात् योगह्नक्षेम के करनेवाले। जो अप्राप्त है उसे प्राप्त करवा देना योग है और जो मिला है अर्थात् प्राप्त हो चुका है, उसकी रक्षा करना क्षेम है। ऐसे योग और क्षेम करनेवाले को नाथ कहते है।

भगवान को लौकान्तिक देवों का नाथ कहा ह्न उसमें से ऐसा अभिप्राय निकलता है कि वे लौकान्तिक देव सम्यग्दृष्टि हैं; उन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसके भगवान रक्षक हैं और अप्राप्त ह्न ऐसी सर्वज्ञता उसे प्राप्त करवाने में भगवान निमित्त हैं। भगवान जिसके नाथ हों ऐसे जीव को स्वभाव के भान से सम्यग्दर्शन तो प्राप्त होता ही है। उस सम्यग्दर्शन का अब विरह नहीं होने दें और अप्राप्त ह्न ऐसी परमात्मदशा को प्राप्त करावें ह्न इसप्रकार भगवान सम्यग्दृष्टियों के ही नाथ हैं।

भव्यजीवरूपी कमल को विकसित करने में भगवान सूर्य समान हैं। जिसप्रकार कमल में खिलने की शक्ति है, लकड़ी में नहीं है; उसीप्रकार भव्यजीव चैतन्यस्वभाव की शक्ति का भान करके उसमें एकाग्रता से आत्मविकास कर लेते हैं, तब भगवान को निमित्त कहा जाता है। जिस जीव में विकास की योग्यता ही नहीं, उसके लिये भगवान निमित्त भी नहीं हैं। द्रव्य त्रिकाल सत् है और समय–समय की पर्याय भी स्वतंत्र है, उसमें निमित्त के कारण कुछ भी नहीं होता । जिनमें विकसित होने की शक्ति है ह्न ऐसे भव्यजीवों के लिये ही भगवान निमित्त हैं।

पुनश्च, वह सर्वज्ञ भगवान आनन्द की भूमि हैं, जिनकी चैतन्य भूमि में आनन्द के ही फल पकते हैं। असंख्यप्रदेशी आत्मा तो आनन्द का ही क्षेत्र है, दु:ख उसके मूल स्वभाव में है ही नहीं। नेमिनाथ भगवान आनन्द के ही स्थान हैं। ऐसे श्री नेमिनाथ भगवान हमें शाश्वत सुख प्रदान करें ह्न यह निमित्त की अपेक्षा कथन है।

हे नाथ ! जैसे आप आनन्दभूमि हो, वैसे ही हमारा आत्मा भी आनन्द की भूमि है। अब हम उसी की श्रद्धा–ज्ञान–लीनता करके पूर्णानन्द प्रगट करेंगे, तब वह शाश्वत रूप से टिका रहेगा। पूर्णानन्द को प्राप्त आत्मा पुनः संसार में वापस नहीं आता। जब तक आत्मा रहेगा; तब तक उसका आनन्द भी शाश्वत रहेगा। आत्मा का आनन्द कभी आत्मा से जुदा नहीं होता। 'भगवान हमें शाश्वत सुख प्रदान करो' ऐसा कहा है; किन्तु भक्ति में तो निमित्त से कथन होता है; किन्तु भावना तो निज आत्मस्वभाव की ही है । इसप्रकार इस गाथा में भगवान सर्वज्ञ को अठारह दोष रहित बताया गया है। ●

वास्तविक भेदविज्ञान

आत्मार्थी पर को भी जानते हैं, पर उससे कुछ पाने के लिये नहीं, अपनाने के लिये भी नहीं; **पर** से भिन्न **स्व** की पहिचान के लिये ही वे पर को जानते हैं।

उनका पर को जानना भी स्व की खोज है; क्योंकि उन्हें पर से भिन्न आत्मा को जानना है; पर को न जानेंगे तो उसमें आत्मबुद्धि हो सकती है। जिससे भिन्न जानना है, उसे भी जानना होगा, पर उसे जानने के लिये नहीं; आत्मा को जानने में भूल न हो जावे, मात्र इसलिये उसे जानना है।

यद्यपि खोज की प्रक्रिया व खोज को भी व्यवहार से भेद–विज्ञान कहा जाता है; तथापि जिसे खोजना है उसी में खो जाना ही वास्तविक भेदविज्ञान है अर्थात् निज अभेद में खो जाना, समा जाना, रम जाना, जम जाना ही भेदविज्ञान है।

भेद–विज्ञानी जीव की दृष्टि अविकृत होती है। वह आत्मा को रागी–द्वेषी अनुभव नहीं करता और न ही वह आत्मा को सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आदि भेदों में अनुभव करता है। अनुभव में अशुद्धता और भेद नजर नहीं आता।

ह्न तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ – 129

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

अब आगामी कलश 272 में आचार्य अमृतचन्द्रदेव आत्मा मेचक, अमेचक इत्यादि अनेकप्रकार से दिखाई देता है; तथापि यथार्थ ज्ञानी निर्मलज्ञान को नहीं भूलता। इस अर्थ को स्पष्ट करते है। कलश मूलत: इसप्रकार है ह्न

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं,
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मन:
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥

(रोला)

अरे अमेचक कभी कभी यह मेचक दिखता।
कभी मेचकामेचक यह दिखाई देता है॥
अनंत शक्तियों का समूह यह आतम फिर भी।
दृष्टिवंत को भ्रमित नहीं होने देता है॥

यहाँ ज्ञानी कहता है कि ह्न मेरे तत्त्व का ऐसा स्वभाव है कि कभी तो वह मेचक (अनेकाकार, अशुद्ध) दिखाई देता है, कभी मेचक-अमेचक (दोनों रूप) दिखाई देता है और कभी अमेचक (एकाकार, शुद्ध) दिखाई देता है; तथापि परस्पर सुसंहत (सुमिलित, सुग्रन्थित) प्रगट शक्तियों के समूहरूप से स्फुरायमान वह आत्मतत्त्व निर्मल बुद्धिवालों के मन को विमोहित (भ्रमित) नहीं करता।

आत्मतत्त्व अनेक शक्तियोंवाला होने से किसी अवस्था में कर्मोदय के निमित्त से अनेकाकार अनुभव में आता है; किसी अवस्था में शुद्ध एकाकार अनुभव में आता है और किसी अवस्था में शुद्धाशुद्ध अनुभव में आता है; तथापि यथार्थ ज्ञानी स्याद्वाद के बल के कारण भ्रमित नहीं होते, जैसा है वैसा ही मानते हैं, वे ज्ञानमात्र से च्युत नहीं होते।

मैं चिदानन्दघन एवं चिन्मात्र वस्तु आत्मा हूँ ह्न ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, वे सम्यग्ज्ञानी हैं। वे अपने आत्मतत्त्व को कैसा जानते हैं ? इसकी यह सरस चर्चा है। मेचक अर्थात् मलिनता है, पर्याय में अशुद्धता है, दु:ख है; किन्तु वह मलिनता पर के कारण नहीं, अपितु अपने से है, अपना ही ऐसा परिणमन है ह्न ऐसा ज्ञानी जानते हैं।

प्रवचनसार के 47 नयों के प्रकरण में कर्त्ता व भोक्तानय की बात कही है। वहाँ कहा है कि ज्ञानी की पर्याय में उसकी कमजोरीवश राग का परिणमन है; किन्तु वह उसे करने लायक नहीं मानता। वर्तमान में उसके पुरुषार्थ की कमजोरी से राग का परिणमन है, इस अपेक्षा वह उस राग का कर्त्ता-भोक्ता है। यद्यपि दृष्टि उस राग को नहीं स्वीकारती; क्योंकि दृष्टि का विषय एक अभेद चिन्मात्र आत्मा है; किन्तु साथ ही सम्यग्ज्ञान ऐसा जानता है कि ह्न मेरी दशा में मेचकपना, रागादिभावरूप मलिनता है, ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है न ? इसकारण स्व के साथ पर्याय में जो राग है, उसको वह जानता है। गणधर आदि जो क्षायिक समकिती होते हैं, वे भी ऐसा ही जानते हैं।

देखो ! आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने इसी समयसार नामक शास्त्र की आत्मख्याति नामक टीका लिखी। इस महान टीका के तीसरे कलश में उन्होंने कहा है कि ह्न द्रव्यदृष्टि से मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, फिर भी मेरी परिणति रागादि परिणामों की व्याप्ति से निरन्तर मलिन है। मेरी दृष्टि निरन्तर चिन्मात्र द्रव्यवस्तु पर रहते हुए भी पर्याय में मलिनता है ह्न ऐसा ज्ञान जानता है। जबतक राग या कर्म की पूर्ण निवृत्ति न हो, तबतक ज्ञानी को ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों एकसाथ चलती हैं। जितना राग है, उतनी कर्मधारा भी है; किन्तु ज्ञानी उसे भी जानता ही है।

प्रश्न ह्न एक ओर ऐसा कहते हैं कि ह्न चौथे गुणस्थान से शुद्धत्व परिणमन है

और दूसरी ओर कहते हैं कि छट्ठे गुणस्थान में भी मलिनता है ह्न यह कैसे संभव है ?

उत्तर ह्न भाई ! जहाँ जो अपेक्षा हो, उसे यथार्थ समझना चाहिए। जबतक यथाख्यात चारित्र न हो, तबतक राग होता है। यद्यपि दृष्टि उसे स्वीकारती नहीं है; तथापि ज्ञान उसे यथास्थिति (जैसा है वैसा) जानता है।

अहा ! यह सर्वज्ञप्रणीत मार्ग है ह्न इसे युक्ति से जैसा है वैसा जानना चाहिये।

अब कहते है कि ह्न सम्यग्ज्ञानी के चारित्रगुण की एक ही समय की पर्याय के निर्मल एवं मलिन (आंशिक निर्मलता एवं आंशिक मलिनता) ह्न ऐसे दो भाग दिखाई देते हैं। एक समय में दो धारायें हैं न ? ज्ञानी को जिससमय और जिसतरह शुद्धता का ज्ञान है; उसीसमय और उसीतरह विद्यमान अशुद्धता-मलिनता का भी ज्ञान है। वह उसे भी जानता है।

निर्विकल्प अनुभव में, शुद्धोपयोग की दशा में अकेला आनन्द और शुद्धता ही है। उसकाल में यद्यपि अबुद्धिपूर्वक होनेवाला राग विद्यमान है; तथापि वह ख्याल में नहीं आता। निर्विकल्प वेदन में शुद्धता का ही वेदन है उस काल में अबुद्धिपूर्वक हो रहे राग का वेदन नहीं है।

निर्मल व मलिन ह्न दोनों पर्यायें परस्पर में अच्छी तरह गुंथी है, एकमेक जैसी हो रही हैं। चौदहवें गुणस्थान तक जो असिद्धत्व भाव कहा है, वह भी संसार है। समकिती (चतुर्थ गुणस्थानवर्ती) की पर्याय में जितने अंश में स्वभाव की दृष्टि व स्थिरता हुई, उतनी निर्मलता तथा जितने अंश में राग है, उतनी मलिनता है ह्न ये दोनों सुग्रंथित हैं।

समकिती जीव की बुद्धि निर्मल हो गई है, उसको आत्मतत्त्व की निर्मलता व मलिनता ह्न दोनों एक साथ दिखती है; किन्तु ये उसके मन को विमोहित नहीं करती; अत: धर्मीजीव मिथ्याभाव को प्राप्त नहीं होता। अहाहा ! धर्मी जीव को एकसाथ सुख का वेदन और अशुद्धता के दुख का वेदन होता है तो भी वह राग से चलायमान नहीं होता। एक पर्याय में जितना मोक्षमार्ग प्रकट हुआ है; उतना आनंद का भाग तथा जितना राग है, उतना दुख का भाग ह्न दोनों ही वस्तुस्थिति है। इन दोनों को ही धर्मी जीव बराबर जानता है। **(क्रमश:)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : क्या व्यवहारनय सर्वथा निषिद्ध है ?

उत्तर : नहीं भाई ! व्यवहारनय सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है; क्योंकि साधक जीव को जबतक अपूर्णदशा वर्तती है; तबतक भूमिकानुसार दया-दान-पूजा-भक्ति-व्रत-तपादि का शुभरागरूप व्यवहार आता है, आये बिना रहता नहीं और उसको उस-उस काल में उस-उस भूमिका में उसे जानना योग्य है, प्रयोजनवान है; निषेध करने योग्य नहीं है; परन्तु इसका ऐसा अभिप्राय कदापि नहीं है कि वह आदरणीय भी है। हाँ, भूमिकानुसार उत्पन्न होनेवाले राग को जानना उचित ही है।

प्रश्न : व्यवहार का निषेध करने से तो जीव अशुभ में चला जाएगा ?

उत्तर : अरे भाई ! जो शुभरागरूप व्यवहार में आया है, वह अशुभराग को छोड़कर ही तो आया है। अब उसको स्व का ह्न निश्चय का आश्रय कराने के लिए व्यवहार का निषेध करते हैं। वहाँ अशुभ में जाने की बात ही कहाँ है।

प्रश्न : क्या व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का वास्तविक कारण नहीं है ?

उत्तर : हाँ ! मोक्ष का कथन मात्र कारणरूप व्यवहाररत्नत्रय तो भवसागर में डूबे हुए जीवों ने पहले भव-भव में सुना है और किया भी है। दया-दान-भक्ति-व्रत-तपादि शुभराग का व्यवहार तो भवसागर में डूबे हुए जीवों ने अनन्तबार श्रवण करके आचरण भी किया है; परन्तु वह व्यवहाररत्नत्रय तो कथन मात्र ही मोक्ष का कारण है। जो राग दु:खरूप है, विषरूप है, वह अमृतरूप मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है ? देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति-पूजा, जिनमन्दिर निर्माण करवाना आदि तो भव-भव में अनन्तबार किया है, शास्त्र का ग्यारह अंग का ज्ञान, नवतत्त्व की भेदरूप श्रद्धा और व्रत-तपादि का कारण पहले अनन्तबार किया है, किन्तु अरे रे ! खेद है कि जो सर्वथा एक ज्ञानस्वरूप है ह्न ऐसे परमात्मतत्त्व को जीव ने एकबार भी नहीं सुना, आचरण नहीं किया, अत: भवार्णव से पार नहीं हुआ।

प्रश्न : व्यवहार का अति निषेध करना उचित नहीं है ह्न ऐसा पंचसंग्रह में कहा है, उसका क्या आशय है ?

उत्तर : भगवान का दर्शन,पूजन, भक्ति, शास्त्रश्रवण, स्वाध्याय आदि व्यवहार होता है, जीव को व्यवहार का परिणाम आता है; यदि उसका निषेध करने जाए तो जिनदर्शन, श्रवणादि कुछ भी नहीं रहेगा। पर्याय में पंच महाव्रतादि के परिणाम का व्यवहार होता है अथवा नवदेव के दर्शन, भक्ति आदि का व्यवहार होता है, उसको माने ही नहीं तो वह मिथ्यादृष्टि है और उस व्यवहार से धर्म होता है ह्न ऐसा माने तो भी मिथ्यादृष्टि है। पर्याय है और उस पर्याय में अनेकप्रकार के शुभराग का व्यवहार है, उसको नहीं माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। तीर्थंकर भगवान के कल्याणकों में करोड़ों देवों की सेना सहित इन्द्रादि दर्शन-पूजन आदि के लिए आते हैं। भले ही वह व्यवहार हेय है; किन्तु वह भाव आता अवश्य है, आये बिना रहता नहीं। वह व्यवहार जानने योग्य है, उसे यथावत् (सच्चा) जाने तो मिथ्यादृष्टि है। एक ओर तो कहते है कि निर्मल क्षायिक पर्याय का भी लक्ष करे तो राग होता है; अत: उस निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहकर हेय कहा और दूसरी ओर कहते हैं कि शुभरागरूप व्यवहार आता है, होता है; उसको नहीं माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है।

देव-शास्त्र-गुरु जो व्यवहार के विषय है, उन्हें जानना तो चाहिए। भले ही वे आश्रय करने योग्य नहीं हैं, किन्तु जानने योग्य तो अवश्य हैं। व्यवहार है ह्न ऐसा न जाने तो मिथ्यादृष्टि है। जैनधर्म अनेकान्त है। उसे बराबर समझना है, वह न समझे तो एकान्त हो जाएगा।

प्रश्न : आगम के व्यवहार और अध्यात्म के व्यवहार की परिभाषा बताइये ?

उत्तर : स्वरूप की दृष्टि होने पर जो शुद्ध परिणमन होता है, वह अध्यात्म का व्यवहार है और महाव्रत, त्रयगुप्ति आदि शुभराग आगम का व्यवहार है।

प्रश्न : आगम का निश्चय-व्यवहार क्या है और अध्यात्म का निश्चय-व्यवहार क्या है ?

उत्तर : अध्यात्म में शुद्धद्रव्य को निश्चय कहते हैं और शुद्धपरिणति को व्यवहार कहते है; जबकि आगम में शुद्धपरिणति को निश्चय कहते है और उसके साथ वर्तते हुए शुभपरिणाम को व्यवहार कहते हैं।

प्रश्न : निश्चय है वह मुख्य है या मुख्य है वह निश्चय है ?

उत्तर : मुख्य है, वही निश्चय है। यदि निश्चय को मुख्य कहा जावे तो पर्याय भी निश्चय है, अत: वह भी मुख्य हो जावेगी; किन्तु ऐसा नहीं है। मुख्य है, वही निश्चय है और गौण है, वह व्यवहार है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में इसका विशद् स्पष्टीकरण किया है। श्रद्धा में त्रिकाली स्ववस्तु एक ही मुख्य है। **(क्रमश:)**

<u>समाचार दर्शन</u> –

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित ह्न

सातवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित सातवें आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का उद्घाटन मुख्यअतिथि के रूप में पधारे विश्व आयुर्वेद परिसंघ के महामंत्री वैद्य श्री कैलाशनाथजी शर्मा के करकमलों से दिनांक 17 अक्टूबर को हुआ। समारोह की अध्यक्षता श्री पीयूषजी बज कोटा एवं श्री अजीतप्रसादजी जैन दिल्ली ने संयुक्तरूप से की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री कमलचन्दजी बोहरा कोटा एवं श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन कोटा मंचासीन थे। इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने ट्रस्ट का परिचय देते हुए वर्तमान समय में आध्यात्मिक शिविरों की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

सभा का संचालन पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया। उद्घाटनसभा के पूर्व श्री नेमीचन्दजी पहाड़िया, पीसांगन के करकमलों से झण्डारोहण किया गया।

शिविर में प्रतिदिन प्रात: एवं रात्रि में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनसार परमागम के शुभपरिणामाधिकार पर अध्यात्मरसगर्भित मार्मिक व्याख्यान हुये।

रात्रि में डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों के पूर्व पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, पण्डित रमेशचन्दजी जैन, डॉ. दीपकजी जैन, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित अशोकजी शास्त्री तथा तीन दिन पण्डित शैलेषभाई शाह तलोद के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ।

दोपहर की व्याख्यानमाला में क्रमश: डॉ. श्रेयांसकुमारजी सिंघई, पण्डित कमलकुमारजी जैन, पण्डित कान्तिकुमारजी पाटनी, डॉ. भागचन्दजी जैन, डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ मिला।

प्रतिदिन पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा षट्कारक, ब्र. यशपालजी जैन द्वारा दोनों समय गुणस्थान विवेचन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक एवं नयचक्र, पण्डित नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री द्वारा छहढाला, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील द्वारा तत्त्वार्थसूत्र तथा पण्डित संजीवकुमारजी गोधा द्वारा क्रमबद्धपर्याय पर कक्षायें ली गईं।

शिविर के मध्य श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा **'प्रमुख जैन सिद्धांत : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की दृष्टि में'** विषय पर गोष्ठी रखी गई। तथा एक दिन अकलंक शिक्षण संस्थान बांसवाड़ा के विद्यार्थियों द्वारा **'तत्त्वगोष्ठी'** रखी गई।

शिविर के मध्य योगसार प्राभृत, ऐसे क्या पाप किये, जैन के.जी. (मराठी), पंचास्तिकाय पद्यानुवाद एवं चौबीस तीर्थंकर वन्दना, अन्तर्द्वन्द, सिद्धचक्र मण्डल विधान, रामकहानी, छहढ़ाला, क्रिया-परिणाम-अभिप्राय आदि 15 पुस्तकों का विमोचन किया गया।

इस शिविर के आमंत्रणकर्त्ता श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसादजी सरावगी परिवार

कोलकाता, श्रीमती श्रीकान्ताबाई पूनमचन्दजी छाबड़ा परिवार इन्दौर, श्री भगवानजी कचराभाई शाह की स्मृति में श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह परिवार लंदन एवं एक मुमुक्षुभाई मुम्बई थे।

एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान के आमंत्रणकर्त्ता श्रीमती प्रेमाबाई शांतिलालजी सर्राफ परिवार खिमलासा एवं श्री किशोरकुमारजी मोतीलालजी पाटनी परिवार नान्देड थे।

इस अवसर पर प्रतिवर्ष अक्टूबर माह में आयोजित होनेवाले शिक्षण-शिविर के **परम संरक्षक** के रूप में श्रीमती मानकुंवर माधवसिंहजी जैन सुपुत्र श्री निहालचन्दजी घेवरचन्दजी जैन जयपुर, श्रीमती बसन्तीबाई सनतकुमार जैन भोपाल एवं श्रीमती स्व. शकुन्तलादेवी की स्मृति में श्री जवाहरलालजी जैन (फिरोजाबादवाले) जयपुर ने स्वीकृति प्रदान की।

शिविर में पूरे देश से पधारे 939 आत्मार्थियों ने धर्मलाभ लिया। इस अवसर पर 65 हजार रुपयों का सत्साहित्य एवं 17 हजार रुपयों के सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे। •

कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन द्वारा आयोजित –

शिखर शिविर सानन्द सम्पन्न

मधुबन (झारखण्ड) : यहाँ सम्मेदशिखर की तलहटी में दिनांक 8 अक्टूबर से 15 अक्टूबर, 2004 तक कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन द्वारा आयोजित बृहतआध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं बाल संस्कार शिविर अनेक उपलब्धियों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।

दिनांक 8 अक्टूबर, 2004 को मध्यलोक जिनमंदिर के प्रांगण में श्री पवनकुमारजी जैन अलीगढ़ द्वारा झण्डारोहण किया गया। शिविर का उद्घाटन श्री अभिनन्दनप्रसादजी सहारनपुर ने किया। शिविर के आमंत्रणकर्त्ता श्री भीमजीभाई भगवानजीभाई शाह परिवार, लंदन थे।

शिविर में प्रतिदिन ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित विमलप्रकाशजी झांझरी उज्जैन, ब्र. केशरीचन्दजी 'धवल' छिन्दवाड़ा, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना आदि के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

व्याख्यानमाला के माध्यम से पण्डित बाबूभाई मेहता फतेपुर, ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद, ब्र. हेमचन्दजी 'हेम' भोपाल, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन जबलपुर, पण्डित चन्दुभाई फतेपुर, पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री जेवर, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित अरहंतप्रकाशजी झांझरी उज्जैन, पण्डित सुबोधजी सिंघई सिवनी आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला।

शिविर के मध्य दो दिन **सम्यग्दर्शन** एवं **सम्यग्ज्ञान** विषय पर विद्वत् सेमीनार रखा गया; जिसमें आमंत्रित विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये। विद्वानों के माध्यम से ही एक दिन भजन संध्या का कार्यक्रम रखा गया; जिसमें पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर, पण्डित प्रदीपजी झांझरी, पण्डित वीरेन्द्रजी आगरा, ब्र. सुमतप्रकाशजी आदि विद्वानों ने अपने भजन प्रस्तुत किये।

12 अक्टूबर को सभी शिविरार्थियों द्वारा सम्मेदशिखर की सामूहिक वंदना की गई। बाल संस्कार शिविर के अन्तर्गत 14 अक्टूबर को विशाल अहिंसा रैली निकाली गई; जिसमें लगभग 2000 बच्चों ने भाग लिया।

शिविर में पूरे देश से पधारे आत्मार्थियों के अतिरिक्त अमेरिका, इंग्लैण्ड एवं कनाडा से पधारे अनेकों मुमुक्षुओं ने भी धर्मलाभ लिया; जिनमें रश्मिनभाई एवं रोमिन भाई शाह लंदन का विशेष सहयोग रहा। इस अवसर पर 1 लाख 50 हजार रुपयों का सत्साहित्य तथा प्रवचनों के 4 हजार सी.डी. कैसिट्स घर-घर पहुँची। •

हार्दिक बधाई !

1. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक डॉ. विमलकुमारजी जैन, जयपुर को शैक्षिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में शोधपूर्ण कार्य एवं उनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिये **राजस्थान सरकार का सर्वोच्च राज्यस्तरीय पुरस्कार**-2004 राजस्थान के राज्यपाल मदनलाल खुराना द्वारा, शिक्षामंत्री घनश्यामजी तिवाड़ी की अध्यक्षता एवं शिक्षा राज्यमंत्री वासुदेव देवनानी के विशिष्टातिथ्य में रजत प्रतीक चिन्ह, प्रशस्ति पत्र एवं नकदी प्रदानकर सम्मानित किया गया।

2. वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक के प्रबन्ध सम्पादक श्री संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा आयोजित **राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा** (**NET**) में चयन हो गया है। ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व आपने जैनविश्वभारती, लाडनूँ विश्वविद्यालय से एम.ए. के जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म-दर्शन विषय में वरीयतासूची में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया था।

3. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक श्री योगेशकुमार जैन, बरा का **कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्ति** (**JRF**) में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा चयन हो गया है तथा आपने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से जैनदर्शनाचार्य परीक्षा में **स्वर्णपदक** भी प्राप्त किया।

आप सभी की इस उपलब्धी पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, श्री टोडरमल दि. जैन सि. महा. परिवार एवं वीतराग-विज्ञान परिवार की ओर से हार्दिक बधाई ! **– सम्पादक**

छपकर तैयार ...

सम्पूर्ण ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पर प्रकाश डालनेवाली डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतमकृति प्रवचनसार अनुशीलन, पृष्ठ-456, मूल्य : 30 रुपये छपकर तैयार है; इच्छुक महानुभाव निम्न पते से मंगा सकते हैं। **– साहित्य विक्रय विभाग,**
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)

अविस्मरणीय अद्भुत

राजस्थान में स्थित प्रसिद्ध श्वेताम्बरतीर्थ नागेश्वर पार्श्वनाथ में बने विशाल पंडाल में रिलीजियस कान्फ्रैंस कमेटी, जैन सोश्यल ग्रुप इन्टरनेशनल फैडरेशन, मुम्बई द्वारा आयोजित सभा में दिनांक 2 अक्टूबर, 2004 को देश-विदेश से पधारे 2000 मेम्बर्स की उपस्थिति में **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल , जयपुर** का 'अहिंसा : महावीर की दृष्टि में' विषय पर मार्मिक उद्बोधन हुआ; जिसके माध्यम से समस्त सदस्यों में एक नवचेतना का निर्माण हुआ। **समिति के चेयरमेन श्री विजेन्द्र गदिया** लिखते हैं ह्न

दिनांक 2 अक्टूबर, 2004 का दिन सिर्फ मेरे लिये ही नहीं, बल्कि उपस्थित लगभग 2000 लोगों के लिये कभी न भूलनेवाला दिन होगा। डॉ. भारिल्ल की प्रखरवाणी, तेजस्वी उद्बोधन ने उपस्थित जैन समुदाय को एक नई उर्जा दी हैं। चिन्तन करने के लिये विषय दे दिया हैं। बिखरते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की हैं।

जरूरत हैं हमारे समाज में आप जैसे चिन्तक, प्रखरवक्ता की जो समाज को सही मार्गदर्शन दे सके, आनेवाली पीढ़ी को सही रास्ता दिखा सकें।

आपने अपने व्यस्ततम समय में से थोड़ा सा वक्त निकालकर रिलीजियस कान्फ्रैन्स को सफलता के शिखर तक पहुचाँने में सहयोग प्रदान किया; तदर्थ जितना भी आभार माना जाये कम है। आशा है कि आपका स्नेह व सहयोग सदैव बना रहे। एक बार पुन: धन्यवाद !

निर्मलकुमार ठोलिया राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित

एलोरा (औरंगाबाद) : श्री गुरुदेव समन्तभद्र विद्यामन्दिर हाईस्कूल, एलोरा के प्रधानाध्यापक श्री निर्मलकुमार चम्पालाल ठोलिया शिक्षक दिन के शुभ अवसर महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के करकमलों से **आदर्श शिक्षक** के रूप में सम्मानित किये गये। आपने अपनी विद्यालयीन शिक्षा श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल एलोरा में ही पूरी की तथा इसी प्रशाला में आज आप प्रधानाध्यापक हैं। आप परिश्रमी एवं दयालू स्वभाव के हैं। आपकी इस उपलब्धि पर वीतराग-विज्ञान परिवार की ओर से आपको हार्दिक बधाई !

डॉ. भारिल्ल के वर्ष 2004 एवं 2005 के आगामी कार्यक्रम

26 नव. से 2 दिसम्बर, 04	शिकोहाबाद (उ.प्र.)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा
27 से 31 दिसम्बर, 04	देवलाली (नासिक)	विधान एवं शिविर
08 से 09 जनवरी, 05	मुम्बई (कांदीवली)	डॉक्टरों का सम्मेलन
07 से 13 फरवरी, 05	दिल्ली	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा